युवा पीढ़ी को उज्ज्वल भविष्य का आश्वासन

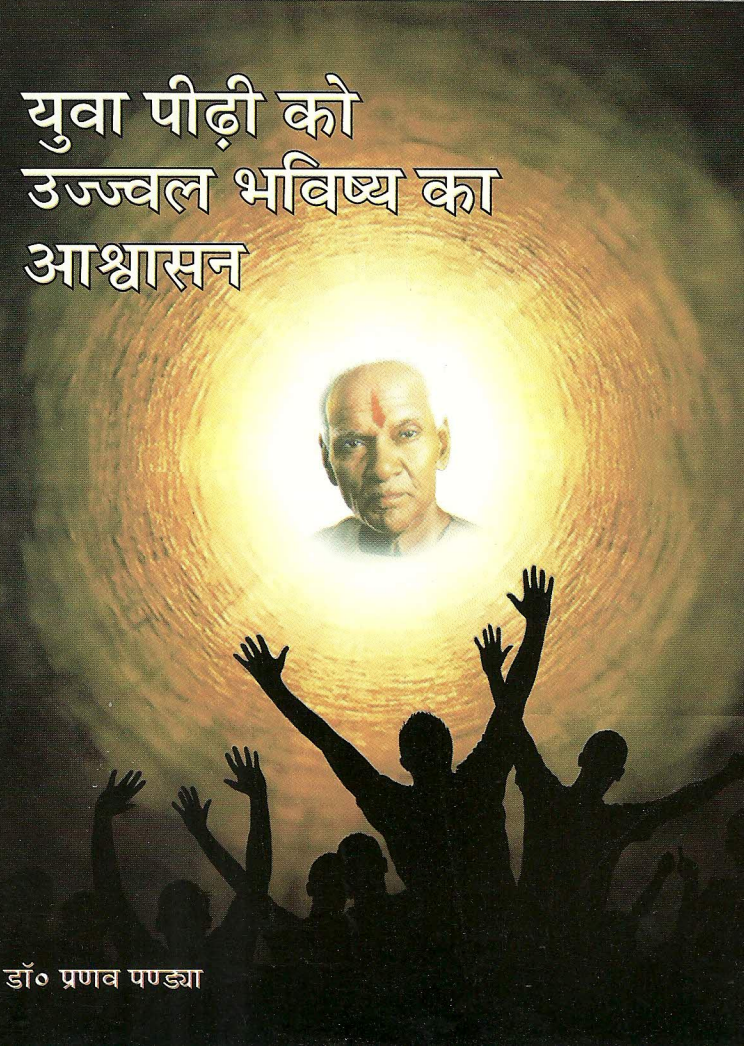

डॉ० प्रणव पण्ड्या

युवा पीढ़ी को उज्ज्वल भविष्य का आश्वासन

प्रकाशक

श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट (TMD)

गायत्री नगर, श्रीरामपुरम्-शांतिकुंज, हरिद्वार

(उत्तराखण्ड) पिन-249411

प्रथम आवृत्ति-सन् 2012 मूल्य-7/-

- युवा पीढ़ी को उज्ज्वल भविष्य का आश्वासन

- सम्पादक
  डॉ. प्रणव पण्ड्या

- प्रथम आवृत्ति
  सन् 2012

- मूल्य-7/-

प्रकाशक
श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट (TMD)
गायत्रीतीर्थ, श्रीरामपुरम्-शांतिकुंज, हरिद्वार
(उत्तराखण्ड) 249411
फोन- 91-01334-260602, 261955 फैक्स-01334-260866
Website: www.awgp.org E-mail: shantikunj@awgp.org

गलती करना बुरा नहीं है, बल्कि गलती को न सुधारना बुरा है। संसार के महान् पुरुषों ने भी अनेक तरह की गलतियाँ की हैं। रावण जैसा विद्वान् अपने दुष्कृत्यों से राक्षस बन गया। रत्नाकर (वाल्मीकि) डकैत रहे हैं। सूर और तुलसीदास कामान्धता में गलती करते रहे थे। नानक, कबीर, मीरा, रसखान आदि सांसारिक जीवन में गलती करते रहे; लेकिन इन्होंने गलती को सुधारा और आगे बढ़कर महापुरुष बने। स्मरण रखें- एक गलती को सुधारकर आप किसी न किसी क्षेत्र में आगे बढ़ जाते हैं।

[illegible] विक्रय केन्द्र
८, [illegible], शांता वाडी,
बोम्बे बाजार के पास की गल्ली,
[illegible] जे. पी. रोड अंधेरी (प.), मुंबई-58.
फोन:26250289/262457[illegible]18659

(अखण्ड ज्योति-१९५१, नवम्बर, पृ० १४)

यदि आप आज किन्हीं कठिनाइयों में हैं, तो इसका कारण ईश्वर नहीं; वरन् आपके ही कुछ दोष हैं, जिन्हें आप भले ही जानते हों या न जानते हों। पाप एवं दुष्कर्म ही एकमात्र दुःख का कारण नहीं होता। अयोग्यता, मूर्खता, निर्बलता, निराशा, फूट एवं आलस्य भी ऐसे दोष हैं, जिनका परिणाम पाप के ही समान और कई बार उससे भी अधिक दुःखदायी होता है।

(अखण्ड ज्योति-१९४७, अगस्त, पृ० १)

हम अकेले चलें। सूर्य-चन्द्र की तरह अकेले चलने में हमें तनिक भी संकोच न हो। अपनी आस्थाओं को दूसरों के कहे-सुने अनुसार नहीं, वरन् अपने स्वतन्त्र चिन्तन के आधार पर विकसित करें। अन्धी भेड़ों की तरह झुण्ड का अनुगमन करने की मनोवृत्ति छोड़ें। सिंह की तरह अपना मार्ग अपनी विवेक चेतना के आधार पर स्वयं निर्धारित करें। सही को अपनाने और गलत को छोड़ देने का साहस ही हमारे युग निर्माण परिवार के परिजनों की वह पूँजी है, जिसके आधार पर हम युग साधना की वेला में ईश्वरीय प्रदत्त उत्तरदायित्व का सही रीति से निर्वाह कर सकेंगे।

(वाङ्मय-६६, पृ० १.२७)

संसार में काँटें बहुत हैं। उन सबको हटा सकना बहुत ही कठिन है। यह सरल है कि अपने पैरों से जूते पहनने और बिना काँटें-कंकड़ों से कष्ट पाये निश्चिन्तता पूर्वक विचरण करें। सारी दुनिया को अपनी इच्छानुकूल चलाने वाली नहीं बनाया जा सकता, पर अपना सोचने का ढंग ऊँचा उठाकर लोगों से बिना टकराये सरलतापूर्वक अपने को बचाकर रखा जा सकता है और बिना टकराये वक्त गुजारा जा सकता है।

(वाङ्मय-६६, पृ० ६.३०)

ईश्वर के यहाँ देर हो सकती है, अन्धेर नहीं। सरकार और समाज से पाप को छिपा लेने पर भी आत्मा और परमात्मा से उसे छिपाया नहीं जा सकता। इस जन्म या अगले जन्म में हर बुरे-भले कर्म का प्रतिफल निश्चित रूप से भोगना पड़ता है। आज का लिया कर्ज कल चुकाना पड़ेगा। इससे यह नहीं सोचा जा सकता कि कर्ज के नाम पर लिया हुआ पैसा मुफ्त में मिल गया। ईश्वरीय कठोर व्यवस्था उचित न्याय और उचित कर्मफल के आधार पर ही बनी हुई है। सो तुरन्त न सही कुछ देर बाद अपने कर्मों का फल भोगने के लिए हर किसी को तैयार रहना चाहिए।

(वाङ्मय-६६, पृ० ६.१७)

मनुष्य जीवन भी एक यात्रा है। जिसमें पग-पग पर कठिनाइयों के महासागर पार करने पड़ते हैं। इन्द्रियों की लालसाएँ-मन में पनपते भ्रमों की बहुतायत जीवन को पल-पल पर भटकाने की कोशिश करते हैं। यहाँ के चित्र-विचित्र आकर्षणों का हर भँवर समूचे जीवन को डुबो देने के लिए आतुर-आकुल रहता है। जो जीवन यात्रा की शुरुआत से ही सद्गुरु को अपना नाविक बना लेते हैं, उनके हाथों में अपने को सौंप देते हैं, गुरु स्वयं उनकी यात्रा को सरल बना देते हैं; क्योंकि जीवन पथ की सभी कठिनाइयों के वही ज्ञाता और हम सबके वही सच्चे सहचर हैं।

श्रम का सम्मान करो। यह भौतिक जगत् का देवता है। हीरे-मोती श्रम से ही निकलते हैं।

हमारे राष्ट्रका दुर्भाग्य यह है कि श्रम की महत्ता हमने समझी नहीं। हमने कभी उसका मूल्यांकन किया ही नहीं। हमारा जीवन निरन्तर श्रम का ही परिणाम है। बीस-बीस घण्टे तन्मयतापूर्वक श्रम हमने किया है। तुम भी कभी श्रम की उपेक्षा मत करना। मालिक बारह घण्टे काम करता है, नौकर आठ घण्टे तथा चोर चार घण्टे काम करता है। तुम सब अपने आपसे पूछो कि हम तीनों में से क्या हैं? जीभ चलाने के साथ-साथ कठोर परिश्रम करो। अपनी योग्यताएँ बढ़ाओ व निरन्तर प्रगति पथ पर बढ़ते जाओ।

(गुरुवर की धरोहर-प्रथम, पृ० ७१)

ध्येय मार्ग का कोई भी सच्चा पथिक इस सत्य के समर्थन में उत्साह प्रकट किये बिना नहीं रह सकता। मार्ग में यदि कठिनाइयों से टकराने का अवसर न मिले, तो असहनीय नीरसता का समावेश हो जाय और वह नीरसता लक्ष्य पर पहुँचकर दूर नहीं हो सकती। उस नीरसता के साथ मंजिल पर पहुँचने पर कौन-सी नवीनता, कौन-सा सन्तोष और कौन-सा दर्प उपलब्ध हो सकता है? यह मार्ग की बाधाएँ दूर करने में किये गये संघर्ष की ही विशेषता है, जो मंजिल पर पहुँचकर विश्राम, सन्तोष और आनन्द के रूप में अनुभव होती है। प्रगति का वास्तविक आनन्द इसी में है कि कठिनाइयों का संयोग आता रहे और उन पर विजय प्राप्त की जाती रहे।

(वाङ्मय-५७, पृ० ११.१२)

अपने विचारों के रचयिता, पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता आप ही हो। जिस विचार को प्रकट करना चाहो, उसे तुम प्रकट कर सकते हो। जिसे चाहो बढ़कर विकसित और पालन कर सकते हो और जिसे चाहो उसे नाश भी कर सकते हो। इसलिए विचारों के बीज बोने में सदा सावधान रहो। दृढ़ विश्वास रखो कि सूर्य चाहे प्रकाश करना बन्द कर दे, पर विचारों का परिणाम कभी निष्फल नहीं होता। इसलिए आत्मविश्वास से कभी मत डिगो। मन को धैर्य के साथ साधन में लगाये रहो जिससे तुम सफलता प्राप्त करते रहो।

(वाङ्मय-५७, पृ० ६.२२)

हमें यह जानना चाहिए कि ईश्वर किसी के भाग्य में कुछ और किसी के भाग्य में कुछ लिखकर पक्षपात नहीं करता और न भविष्य को पहले से ही तैयार करके किसी को कर्म करने की स्वतंत्रता में बाधा डालता है। हर आदमी अपनी इच्छानुसार कर्म करने में पूर्ण स्वतन्त्र है। कर्मों के अनुसार ही हम सब फल प्राप्त करते हैं। इसलिए भाग्य के ऊपर अवलम्बित न रहकर मनुष्य को कर्म करना चाहिए।

(वाङ्मय-३१, पृ० ३.२६)

संसार में काँटे-कंकड़ बहुत हैं। उन सबको हटा सकना बहुत ही कठिन है, पर यह सरल है कि अपने पैसे से जूते पहनने और बिना काँटे-कंकड़ों से कष्ट पाये निश्चिन्ततापूर्वक विचरण करें। सारी दुनिया को अपनी इच्छानुकूल चलाने वाला नहीं बनाया जा सकता, पर अपनी सोच का ढंग ऊँचा उठाकर लोगों से बिना टकराये सरलतापूर्वक अपने को बचाकर रखा जा सकता है। सज्जनता के आगे दुर्जनों को भी नतमस्तक होना पड़ता है। कम से कम वे अपनी शान्ति भंग कर सकने में तो सफल कदाचित् ही हो पाते हैं।

यह संसार साधना भूमि है। इसे कर्मक्षेत्र कहना अधिक उपयुक्त होगा। जिस-जिस व्यक्ति ने जैसे-जैसे कर्म किये वैसे-वैसे ही फल उसे प्राप्त हुए। महत्ता उनके कर्म की है। बिना कर्म के फल कदापि नहीं मिलता। जरा सोचिए, यदि मनुष्य ढपोरशंख की तरह इधर-उधर की अनेक बातें सोचता-विचारता रहे, मन में मंसूबे और हवाई किले तैयार करता रहे, किन्तु अभ्यास तथा परिश्रम से दूर भागे, तो उसे क्या लाभ हो सकता है? संसार तो कर्म की कसौटी है। यहाँ मनुष्य की पहचान उसके कर्मों से होती है।

(वाङ्मय-२१, पृ० ६.२४)

सन्तोष एक वृत्ति है और सुख-शान्ति उसका परिणाम किन्तु दुर्भाग्यवश हमारे यहाँ सन्तोष का अर्थ आलस्य और प्रमाद माना जाता है। आलस्य और प्रमाद तमोगुण के लक्षण हैं, जबकि सन्तोष सत्त्वगुण से उत्पन्न होता है। सन्तोष का अर्थ यह नहीं है कि हम हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाएँ और गाने लगें-'अजगर करें न चाकरी पंछी करै न काम।' वास्तव में संतोष का अर्थ है-प्रगति पथ पर धैर्यपूर्वक चलते हुए मार्ग में आने वाले कष्टों और कठिनाइयों का प्रभाव अपने ऊपर न पड़ने देना।

(वाङ्मय-३१, पृ० ५.१०)

शरीर में रोज पसीना निकलता है। दाँतों पर रोज मैल जमता है। कपड़े रोज मैले होते हैं। कमरे में रोज धूल जमती है। यदि इन्हें नित्य साफ न किया जाय, तो गन्दगी का कोई ठिकाना न रहे। मल-मूत्र को दूर न हटाया जाये, तो अपने निवास स्थान पर दुर्गन्ध का अम्बार लग जाये। उसी प्रकार नित्य स्वाध्याय एवं सत्संग द्वारा मन में उत्पन्न होने वाले कुविचारों एवं कुसंस्कारों का शमन न किया जाये, तो मनोभूमि कषाय-कल्मषों से कलुषित हुए बिना नहीं रहती।

(वाङ्मय-३१, पृ० १.२७)

नरक को स्वर्ग में परिवर्तित करने की कुञ्जी मनुष्य के हाथ में है। सोचने का तरीका यदि बदल डालें, खिलाड़ी की भावना रखकर जिन्दगी का खेल खेलें, नाटक के पात्रों की तरह अभिनय का आनन्द लेते हुए दिन गुजारें, बुराई में से भलाई और निराशा में से आशा की किरणें ढूँढ़ने का अभ्यास करें, तो कोई कारण नहीं कि रोता रहने वाला मनुष्य हँसते-खिलते गुलाब के रूप में परिणत होकर न केवल अपनी मानसिक समस्या हल कर लें, वरन् पड़ोसियों और सम्बन्धियों के लिए भी प्रसन्नता, आशा एवं प्रेरणा का केन्द्र बन जाये।

(वाङ्मय-३१, पृ० १.१२७)

जब कोई बड़ा काम सामने आता है, तो लोग यह कह कर प्रयास टाल देते हैं कि हमें समय नहीं मिलता, हमारी शक्ति छोटी है या हम अभावग्रस्त हैं। वास्तव में अपनी शक्ति, सामर्थ्य और योग्यता को छोटा मानकर प्रयत्नों से मुख मोड़ना बहाना मात्र है। अन्यथा मनुष्य जिस बीज से बना है, उसकी शक्ति और क्षमता का पारावार नहीं। बचपन से लेकर बुढ़ापा तक न तो उसकी शक्ति कम होती है, न सामर्थ्य। यदि कुछ घटता-बढ़ता है, तो मनोबल और प्राणबल।

(वाङ्मय-५१, पृ० ३.२०)

हर मनुष्य अवतारी है। यदि वह अपने सम्बन्ध में विचार करे और अपने महत्त्व का समुचित उपयोग करे, तो ईश्वर अपनी इच्छा पूरी करने का उत्तरदायित्व उस पर सोच सकता है। आप बोझ को उठायेंगे जिसे अवतारों को उठाना पड़ता है, तो आप भी अवतार बन सकते हैं। ईश्वर अपने पुत्रों से पूछ रहा है कि क्या तुममें से कोई अवतार की जिम्मेदारी ले सकता है? आप अपना हृदय टटोलिए और साहस हो, तो आगे हाथ बढ़ा दीजिए।

(अखण्ड ज्योति-१९४२, जनवरी, पृ० ३२)

क्या कारण है कि हम गांधीजी के झुर्रियों वाले सूखे चेहरे को सुन्दर कहते हैं। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की मूँछ बढ़ी वाला वृद्ध चेहरा हमें आकर्षित करता है। टालस्टाय के लकड़हारों जैसे चेहरे को घर की दीवार पर सुशोभित करते हैं। वहाँ न तो पाउडर है, न मेकअप है, न क्रीम है और न भरे हुए कपोल या तिरछी आँखें। वहाँ तो चिर सौन्दर्य अर्थात् आत्मिक सौन्दर्य की आभा है। उसी के पवित्र भावों की छाया महान् पुरुष की मुखाकृति पर प्रकट होती है। इनके कल्याणप्रद कार्य हजारों कृत्रिम सौन्दर्य प्रसाधनों की सीमा को पार कर ऊपर उठते हैं।

(वाङ्मय-४२, पृ० १५.१६)

नजरें तेरी बदलीं तो नजारे बदल गये।
किश्ती ने बदला रुख, तो किनारे बदल गये।

उपर्युक्त शेर में एक सनातन सत्य छिपा हुआ है। जब अपनी नजरें बदलती हैं, तो नजारे अर्थात् दृश्य बदल जाते हैं। नाव जब अपना रुख दूसरी ओर मोड़ लेती है, तो इधर का किनारा उधर और उधर का किनारा इधर दीखने लगता है। जैसे एक जंक्शन पर पास-पास खड़ी हुई दो गाड़ियों में आरम्भ में एक छोटा-सा मोड़ दिशाओं में थोड़ा अन्तर बनाता है। धीरे-धीरे यह अन्तर इतना बढ़ जाता है कि एक दिल्ली से चलकर कोलकाता जा पहुँचती है और दूसरी मुम्बई। मानव जीवन में भी यही तथ्य काम करता है। व्यक्तियों के दृष्टिकोण में थोड़ा-सा अन्तर जीवन की परिस्थितियों में भारी परिवर्तन प्रस्तुत कर देता है।

सदा याद रखो कि आपके मुख से किसी के लिए उसके पीठ पीछे या सामने निन्दा या चुगली का क्रूर वचन न निकले। कभी किसी भी दूसरे धर्म की निन्दा न होने पाये। छल-छद्म छोड़कर सबसे मृदुल और सरल व्यवहार करें। दम्भाचरण से सावधान रहें। तनिक-सी पाप की उपेक्षा करने से बहुत दिनों की संचित दैवी सम्पदा विनष्ट हो सकती है।

(वाङ्मय-२१, पृ० १.१९)

अपना सुधार संसार की सबसे बड़ी सेवा है। जिसने अपने को जीता उसने सारा संसार जीत लिया। संसार का सुधार अपने सुधार से ही आरम्भ होगा। हम बदलें तो सम्बद्ध वातावरण का आश्चर्यजनक ढंग से बदल जाना सुनिश्चित है। समय की चुनौतियाँ प्रत्येक विचारवान् को झकझोरती हैं कि वह अपने स्वरूप एवं उत्तरदायित्व को समझें और उसके अनुरूप गतिविधियों को बदलने में देर न करें।

(वाङ्मय-५४, पृ० १.७)

अपनी आँखें सही हैं, तो संसार के सभी दृश्य दिखेंगे। यदि वे न रहें, तो अन्धे के लिए सूर्य और चन्द्रमा तक बुझ जाते हैं और सारी दुनिया सदा-सर्वदा के लिए काली चादर से ढँक जाती है। अपने कान सही हैं, तो एक से एक मधुर और ज्ञानवर्द्धक शब्द सुने जा सकते हैं, परन्तु यदि वे खराब हो जाएँ, तो सारी दुनिया मौन हो जायेगी। अपना दिमाग सही हो, तो दुनिया में समझदारी की कमी नहीं, परन्तु यदि दिमाग खराब हो जाय, तो यह सारा संसार पागलों से भरा दिखाई पड़ेगा। अतएव सूर्य उन्हीं के लिए है, जिनके आँखें हैं। गीत उन्हीं के लिए है, जिनके कान हैं। समझदारी उन्हीं के लिए है, जिनकी अपनी समझ सही है।

(वाङ्मय-५४, पृ० १.६)

अपने को, अपनी क्षमता एवं गरिमा को जानो और उसका सदुपयोग करो।

उपनिषद् का बीज मन्त्र है–'आत्मा वा अरे ज्ञातव्यं' अर्थात्–अपने आपको जानो और उसे सम्भालो। जिसने यह जान लिया, तो समझना चाहिए कि संसार में जो कुछ जानने योग्य था, सब कुछ जान लिया। योग का स्वरूप है–अन्तर्मुखी होना। अपने स्वरूप और बल को समझना और समझकर वह मार्ग अपनाना, जिससे आत्म–कल्याण का मार्ग खुलता हो और आमन्त्रित विपत्तियों की धमाचौकड़ी वाला द्वार बन्द होता हो।

(वाङ्मय–५४, पृ० १.७)

चाहने को हर व्यक्ति अच्छी परिस्थितियाँ चाहता है और प्रगतिशील बनना चाहता है, पर उस कार्य में सफल सहयोग किससे मिल सकता है, यह भूल जाता है। वस्तुतः अपना उद्धार आप करें। अपने आपको गिराएँ नहीं। दिशा का चयन और निर्धारण स्वयं करना पड़ता है। उस राह पर अपने पैरों आप चलना पड़ता है। इसके उपरान्त साथी-सहयोगी मिलते चले जाते हैं। इस संसार में किसी बात की कमी नहीं। चोर-उचक्कों को वैसे ही मित्र और अवसर मिलते हैं, तो यदि सन्त, सज्जन, विद्वान् बनना है, तो उसकी राह बताने वाले भी मिल जाते हैं।

(वाङ्मय-५४, पृ० १.६)

अभाव का अन्त नहीं है। इस पृथ्वी के समूचे साधन एक व्यक्ति की तृष्णा बुझाने के लिए भी अपर्याप्त हैं। यदि उन्हीं की ललक सँजोये रखी गयी तो समझना चाहिए कि अनाचार पर उतरना पड़ेगा और जो उपलब्ध है, वह अपर्याप्त एवं नीरस लगेगा। चयन पूरी तरह अपने हाथ है। स्वयं दुःखी रहना, दूसरों को दुःख देना और संपर्क क्षेत्र में दुःख भरा वातावरण छोड़ जाना वह भी अपने हाथ की बात है। इस भीतरी जीवन को बाहर के स्वल्प साधनों से देर तक प्रसन्न नहीं बनाये रखा जा सकेगा। भ्रम में न पड़ें। अपना दृष्टिकोण व्यवहार यदि बदल जाये, तो संसार की व्यथा और कुरूपता पलायन करते देर न लगेगी।

मनुष्य जब अपने को कर्त्तव्य-कर्मों की सान पर चढ़ाता, परिश्रम एवं पुरुषार्थ की आग में तपाता है, तो उसके भीतर सुषुप्त नेता, समाज सुधारक, लेखक, धर्म प्रचारक, वैज्ञानिक, कलाकार, सन्त, उद्योगपति जागकर ऊपर उभर आता है। तब एक साधारण से मजदूर का अनपढ़ बेटा अब्राहम लिंकन, एक साधारण जिल्दसाज की नौकरी करने वाला लड़का माइकेल फैराडे, साधारण वकील स्तर के महात्मा गांधी, कारखाने का छोटा-सा नौकर फोर्ड का आश्चर्यजनक विकास और चौंका देने वाली उन्नति प्रमाणित करती है कि किसी भी मनुष्य के विषय में कुछ भी निश्चित नहीं कहा जा सकता है।

(वाङ्मय-४९, पृ० ५.२२)

अकेले चलना कठिन तो है, पर असम्भव नहीं। गौतम बुद्ध, महात्मा गांधी, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, मीरा, चैतन्य, कबीर आदि मण्डली गठित करने और साधन जुटाने की प्रतीक्षा में नहीं बैठे रहे; वरन् अपने शरीर और मन मात्र को साथ लेकर उस मार्ग पर चल पड़े थे; जो दर्शकों, परामर्शदाताओं को साधनों के अभाव में असम्भव जैसा प्रतीत होता था। इस सन्दर्भ में वे अधिक साहसी दीखते हैं, जो अपने स्वतन्त्र चिन्तन के आधार पर घोंसला छोड़कर अभीष्ट दिशा में उड़ चलते हैं और सफलता-असफलता की बात ईश्वर भरोसे छोड़ देते हैं।

(वाङ्मय-४९, पृ० ५.५२)

वश में किया हुआ मन ही सच्चा मित्र सिद्ध होता है और अनियन्त्रित मन शत्रु के समान भयंकर परिणाम प्रस्तुत करता है। जिसने अपना मन जीत लिया, उसे तीनों लोकों का विजयी कहा जाता है। अभीष्ट सफलताओं की उपलब्धि इसी बात पर निर्भर रहती है कि निर्धारित कार्यक्रम में मन कितनी लगन, स्फूर्ति और दिलचस्पी के साथ लगा। अधूरे मन से किया हुआ हर काम फूहड़ और असफल होता है।

(वाङ्मय-४९, पृ० ५.२५)

हर विचारशील को अनुभव करना चाहिए कि उसके भीतर भी एक महान् पुरुष सोया पड़ा है। उसे प्रयासपूर्वक जगाया जा सकता है, जो आत्मनिर्माण में सफलता प्राप्त कर सकता है। उसके लिए प्रगति के उच्च शिखिर पर पहुँचने में आगे कोई बड़ा व्यवधान खड़ा नहीं होता। यह तो आत्मप्रवंचना ही है कि व्यक्ति अपने अन्दर सोये महान् गुण को पहचान नहीं पाता, न ही उसके लिए कोई प्रयास–पुरुषार्थ ही करता है।

(वाङ्मर्य-४९, पृ० ५.२३)

इच्छा होती है कि हम आगे बढ़ें, प्रगति के पथ पर चलें और अन्य उन्नतिशील व्यक्तियों की तरह कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करें; किन्तु प्रायः यह इच्छा अधूरी ही रहती है। कारण एक ही है कि अपने मनोबल को विकसित कर अपनी समस्याओं को आप हल कर सकने के तथ्य की उपेक्षा की जाती रहती है कि कोई दूसरा हमारी सहायता करे। यह स्मरण रखने की बात है कि मनुष्य स्वयं ही अपना शत्रु और स्वयं ही अपना मित्र है। अपने सद्गुणों को विकसित करके ही कठिनाई पर विजय प्राप्त करना और प्रगति का द्वार प्रशस्त कर सकना सम्भव हो सकता है।

(वाङ्मय-४९, पृ०.५.२३)

हमें अपनी अच्छाइयों को समझना चाहिए। जो सद्गुण मौजूद हैं, उन्हें बढ़ाना चाहिए और जो नहीं है, उन्हें उत्पन्न करना चाहिए। नशेबाजी की आदत किसी को जन्म से नहीं होती। उसे पीछे से सीखी जाती है। जो सद्गुण हमें अब तक के वातावरण में प्राप्त नहीं हो सके हैं, उन्हें सीखने का अभ्यास अब आरम्भ किया जा सकता है। सिखाने से बन्दर जैसा उद्दण्ड जानवर तरह-तरह के खेल-तमाशे करना सीख जाता है, तो कोई कारण नहीं कि मन पर लाठी के बल से नियन्त्रण रखा जाए, प्यार-पुचकार से समझाया जाए, तो वह भी सद्गुणों को अपने स्वभाव का अंग न बना लें। यह कार्य कठिन दीखता तो है, पर वस्तुतः वैसा है नहीं ।

(वाङ्मय-६६, पृ० २.१८)

भूलें वे हैं, जो अपराधों की श्रेणी में नहीं आतीं, पर व्यक्ति के विकास में बाधक हैं। चिड़चिड़ापन, ईर्ष्या, आलस्य, प्रमाद, कटुभाषण, अशिष्टता, निन्दा, चुगली, कुसंग, चिन्ता, परेशानी, व्यसन, वासनात्मक कुविचारों एवं दुभावनाओं में जो समय नष्ट होता है, उसे स्पष्टतः समय की बर्बादी कहा जायेगा। प्रगति के मार्ग में यहे छोटे-छोटे दुर्गुण ही बहुत बड़ी बाधा बनकर प्रस्तुत होते हैं। इसलिए सायं को आत्मनिरीक्षण के समय यह विचार करना चाहिए कि आज इस प्रकार की भूलों में हमारा कितना समय बर्बाद हुआ। यह भूलें प्रत्यक्षतः अपराध नहीं मानी जातीं, तो भी यह अपराधों के समान ही हानिकारक है।

(वाङ्मय-६६, पृ० २.२६)

आज के दिन जो बुराइयाँ और भूलें बन पड़ी हैं, उनका आत्मा द्वारा मन से उसी प्रकार लेखा-जोखा लिया जाना चाहिए जिस प्रकार कोई उद्योगपति अपने कारखाने के मैनेजर से रोज के कार्य और हिसाब का लेखा-जोखा लिया करता है। दोषों की कमी होते चलना और गुणों की बढ़ोत्तरी होना आत्मिक प्रगति के व्यापार में लाभ होने का चिह्न है। यदि बुराइयाँ बढ़ रही हैं और अच्छाइयाँ घटें, तो समझना चाहिए फर्म दिवालिया होने जा रही है। पूर्ण निर्दोष कोई नहीं और न कोई पूर्ण गुणवान् ही इस दुनिया में है, फिर भी प्रयास करते रहा जाए, तो हमारी बुराइयाँ और भूलें दिन-दिन घटती और श्रेष्ठताएँ बढ़ती चली जा सकती हैं।

(वाङ्मय-६६, पृ० २.२७)

आमतौर से हर आदमी अपने को सही, निर्दोष, निर्भ्रान्त और ठीक काम करने वाला मानता है; जबकि वस्तुतः उसमें अनेक त्रुटियाँ और बुराइयाँ भरी पड़ी हैं। त्रुटियों के कारण उसकी उन्नति रुकी पड़ी रहती है और बुराइयों के कारण शक्तियों की बर्बादी ही नहीं होती, वरन् आये दिन नित नयी आपत्तियाँ भी खड़ी होती रहती हैं, पर कठिनाई एक ही है कि अपने दोष किसी के समझ में नहीं आते। जो जीवनक्रम चल रहा है, उससे असन्तोष तो रहता है, पर यह सूझ नहीं पड़ता कि इसमें क्या परिवर्तन किया जाये? अपना चेहरा अपनी आँखों से देख सकना कठिन है। यह तभी सम्भव होता है जब दर्पण का सहारा मिले। अपनी भूलों को ढूँढ़ने के लिए दर्पण के समान आत्मनिरीक्षण की सद्बुद्धि ही अभीष्ट होती है।

(वाङ्मय-६६, पृ० २.२५)

प्रतिभा किसी पर आसमान से नहीं बरसती। वह अन्दर से ही जागती है।

उसे जगाने के लिए केवल 'मनुष्य' होना पर्याप्त है और वह अन्य कोई प्रतिबन्ध नहीं मानती। वह तमाम सवर्णों को छोड़कर 'रैदास' और 'कबीर' का वरण करती है। बलवानों और सुन्दरों को छोड़कर 'गांधी' जैसे कमजोर शरीर और 'चाणक्य' जैसे कुरूप को वह प्राप्त होती है। उसके अनुशासन में जो आ जाता है, वह बिना भेदभाव के उसका वरण कर लेती है।

छोटी-छोटी बातों में दुःखी रहने का तात्पर्य यह है कि आप परमात्मा के विधान की अवहेलना करना चाहते हैं। यों न सोचिए वरन् अपने से दयनीय स्थिति के व्यक्तियों से अपनी तुलना कीजिए। पुरुषार्थ करने की आपमें शक्ति होगी, तो अच्छे परिणाम भी मिल जायेंगे; पर परिणाम की ओर अपना ध्यान रखकर प्राप्त आनन्द को क्यों छोड़ते हैं?

यह दुर्भाग्य ही है कि आज धन को सर्वप्रथम स्थान और सम्मान मिल गया। इसी का दुष्परिणाम यह हुआ कि व्यक्ति अधिकाधिक धन संग्रह करके बड़े से बड़ा सम्माननीय बनना चाहता है, जबकि धन का उपयोग बिना उसे रोके निरन्तर सत्प्रयोजनों में प्रयुक्त करते रहना ही हो सकता है। गड्ढे में जमा किया पानी तथा पेट में रुका हुआ अन्न सड़ जाता है और अपने संग्रहकर्त्ता को उन्मादी बनाते और अनेक विकार पैदा करता है। तिजोरी में बन्द नोट अपने संग्रहकर्त्ता को उन्मादी बनाते हैं और सारे समाज में बदबू भरी महामारी फैलाते हैं। इसलिए धन उपार्जन की प्रशंसा के साथ-साथ यह तथ्य भी जुड़ा हुआ है कि महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे तत्काल प्रयुक्त करते रहा जाये।

मानवता का यही तकाजा है कि हम किसी से ईर्ष्या न करते हुए स्वयं अपना विकास करने का प्रयत्न करें और यथासाध्य दूसरों की उन्नति में सहायक बनकर अपने लिए भी सहायता, सहयोग तथा सहानुभूति सुरक्षित कर लें। इस प्रकार हम ईर्ष्या की आग से बचकर सबके साथ सुख एवं शान्ति का जीवन बिता सकेंगे।

(अखण्ड ज्योति १९६७, अप्रैल,पृ० १८)

सत्य ही सब तरह से हमारे लिए उपासनीय है। सत्य के मार्ग पर प्रारम्भ में कुछ कठिनाइयाँ आ सकती हैं; किन्तु यह जीवन को उत्कृष्ट और महान् बनाने का राजमार्ग है। जिस तरह आग में तपाकर कसौटी पर कसकर सोने की परख होती है, उसी तरह सत्य की कसौटी पर खरे उतरने के लिए आने वाली कठिनाइयों का सामना करना उचित भी है और आवश्यक भी।

जो काम अपने हाथ में लो, उसी में सबके हित का भाव ढूँढ़ते रहो। जहाँ भी दूसरे की भलाई की आवश्यकता समझ में आये, अपना कन्धा लगाकर सहयोग और सहानुभूति प्रकट करो। संसार आपकी भलाई भूल नहीं सकेगा। सभी आपको आदर और प्यार की दृष्टि से देखेंगे। आप अपने हृदय में विश्वात्मा को स्थापित करके तो देखिए।

(अखण्ड ज्योति १९६५, मई, पृ० १२)

सुन्दर बनने के लिए बाहरी साधन जरूरी नहीं हैं। इस भ्रान्त धारणा को कि अधिक बनाव-शृङ्गार करेंगे, तो अधिक लोग आकर्षित होंगे-यह बात अपने मस्तिष्क से निकालकर अन्तःकरण के सौन्दर्य को खोजने का प्रयत्न कीजिए। आपकी प्रसन्नता में, आपके सुखद विचारों में सुन्दरता भरी हुई है। उसे जाग्रत् कीजिए। सच्चा सौन्दर्य मनुष्य के सद्गुणों में है।

(अखण्ड ज्योति १९६५, मार्च, पृ० ४५)

सबसे बड़ी हिम्मत का काम है, अपनी वास्तविकता समझना और अपने दोषों तथा दुर्बलताओं को स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लेना। इसे स्वीकृति के बाद लगेगा कि जिसे दुर्बलताओं से छुड़ाने और पापों से बचाने की जरूरत है, वह प्रथम व्यक्ति हम स्वयं हैं। अपनी कुरूपता स्वीकार करने में जिसे डर नहीं लगता और अपनी असलियत को बिना छिपाये प्रकट करता है, असल में सबसे बहादुर, शूरवीर उसे ही कहना चाहिए।

(अखण्ड ज्योति १९७२, मार्च, पृ० ३८)

राह मिल जाना एक बात है और उस पर सतत आरूढ़ रहकर लक्ष्य प्राप्त करना दूसरी बात है। उद्देश्य की प्राप्ति मार्ग पा लेने से नहीं; वरन् उसकी कठिनाइयों को झेलकर कष्टों और अभावों में पलकर निरन्तर चलते रहने से होती है।

संसार का कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य संकट और विघ्न से रहित नहीं होता। उसकी महत्ता ही इसलिए होती है कि वह संकटों और विघ्नों की सम्भावनाओं से भरा होता है। जिस कार्य में संकट का सामना न करना पड़े और वह आसानी से पूरा हो जाए, तो उसका महत्त्व कम ही रहेगा, फिर वह काम देखने में कितना ही बड़ा क्यों न हो? जो व्यक्ति संकट के भय से प्रगति करने का साहस नहीं करते, उन्हें सोचना चाहिए कि क्या इस जड़ता से वे सर्वथा बच जायेंगे?

(वाङ्मय-५७, पृ० २.४२)

जीवन का हर क्षण एक उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना लेकर आता है। हर घड़ी एक महान् मोड़ का समय हो सकती है। मनुष्य यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता है कि जिस समय, जिस क्षण और जिस पल को वह यों ही व्यर्थ में खो रहा है; वही क्षण, वही समय उसके भाग्योदय का समय नहीं है। क्या पता जिस क्षण को हम व्यर्थ समझकर बर्बाद कर रहे हैं, वही हमारे लिए अपनी झोली में सुन्दर सौभाग्य की सफलता लाया हो।

(अखण्ड ज्योति १९६६, अग०, पृ० १९)

आपके पास जो भी घटना घटे, परिस्थिति आए, व्यक्ति या विचार आए, प्रत्येक के ऊपर कसौटी लगाइए और देखिए कि इसमें क्या उचित है और क्या अनुचित ? कौन नाराज होता है और कौन खुश होता है, यह देखना आप बन्द कीजिए। अगर आपने यह विचार करना शुरू कर दिया कि हमारे हितैषी किस बात में प्रसन्न होंगे ? तो फिर आप कोई सही काम नहीं कर सकेंगे। हमको भगवान् की प्रसन्नता की जरूरत है।

आत्मविश्वास का अर्थ है- अपनी परिस्थितियों और समस्याओं का हल अपने आप में ढूँढ़ना। आप क्यों दूसरे लोगों से सहायता की याचना करते हैं। उनके पास भी तो वही उपकरण हैं, जो परमात्मा ने आपको दिये हैं। क्यों नहीं अपने हाथ-पाँव चलाते। अपनी बुद्धि का उपयोग करते। बाहरी मनुष्य आपको सहायता देकर ऊँचे उठा नहीं सकता। इसके लिए आपको अपनी ही शक्तियों का सहारा पकड़ना पड़ेगा। प्रत्येक दशा में आत्मविश्वास जाग्रत् करना पड़ेगा।

(अखण्ड ज्योति १९६४, नवं०, पृ० १७)

कुछ व्यक्तियों की यह गलत धारणा हो गयी है कि शराब से शक्ति प्राप्त होती है। शराब उत्तेजक मात्र है। पीने के कुछ काल तक इससे हमारी पूर्व संचित शक्ति एकत्रित होकर मात्र उद्दीप्त होती है। नई शक्ति नहीं आती। यह शक्ति उत्पन्न करने के स्थान पर नशे के बाद मनुष्य को निर्बल, निस्तेज और निकम्मा बना जाती है। आदत पड़ने पर इसकी उत्तेजना के बिना कार्य में तबियत नहीं लगती। गरीब भारत का अनगिनत रुपया इसमें व्यय हो जाता है कि पौष्टिक भोजन, दूध, फल इत्यादि के लिए कुछ शेष नहीं बचता। जो व्यक्ति उत्तेजक पदार्थों से शक्ति प्राप्ति की आशा रखता है, वह कृत्रिम माया की मरीचिका में निवास करता है।

सारे संसार को अपनी इच्छानुकूल बना लेना कठिन है; क्योंकि यह परमात्मा का बनाया हुआ है और अपनी इस कृति को वही बदल सकता है। पर अपनी निज की दुनिया को अपने अनुकूल बदल सकना हममें से हर एक के लिए सम्भव है। जिस प्रकार परमात्मा का बनाया हुआ एक संसार है, उसी प्रकार हर मनुष्य की बनायी हुई उसकी अपनी एक निजी दुनिया होती है, जिसे वह अपने दृष्टिकोण के अनुसार बनाता है, उसी में सन्तुष्ट-असन्तुष्ट, खिन्न-प्रसन्न बना रहता है। यदि कोई चाहे तो अपनी दुनिया को बदल सकता है। दृष्टिकोण के परिवर्तन के साथ-साथ यह परिवर्तन पूर्णतया सम्भव है।

(अखण्ड ज्योति १९६२, नवं०, पृ० २५)

हमारा युग निर्माण सत्संकल्प

- हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।
- शरीर को भगवान् का मंदिर समझकर आत्म-संयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।
- मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाए रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।
- इंद्रिय-संयम, अर्थ-संयम, समय-संयम और विचार-संयम का सतत् अभ्यास करेंगे।
- अपने आपको समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।
- मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।
- समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।
- चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।
- अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।

- मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।
- दूसरों के साथ वह व्यवहार न करेंगे, जो हमें अपने लिए पसन्द नहीं।
- नर-नारी परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे।
- संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।
- परम्पराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देंगे।
- सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।
- राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान् रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रान्त, सम्प्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।
- मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है, इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनायेंगे, तो युग अवश्य बदलेगा।
- हम बदलेंगे-युग बदलेगा, हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है।

।। सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा।।

जीवन विद्या का आलोक केन्द्र

देव संस्कृति विश्वविद्यालय

गायत्रीकुंज-शान्तिकुंज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड) भारत

website: www.awgp.org, www.dsvv.org

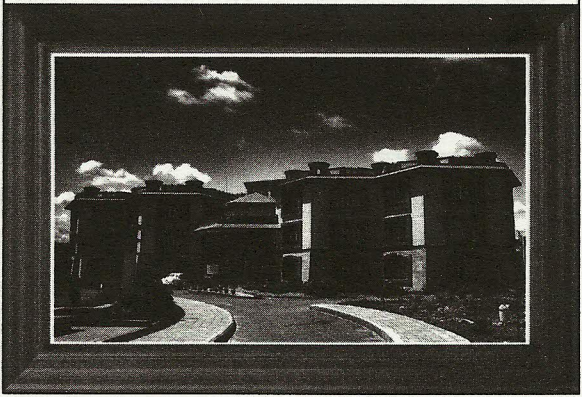

शांतिकुञ्ज- गायत्रीतीर्थ इक्कीसवीं सदी की ज्ञान गंगोत्री है। इसकी स्थापना हिमालय की ऋषि सत्ताओं की योजना को क्रियान्वित करने के लिए वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ, युगदृष्टा आचार्य पं. श्रीराम शर्मा ने की थी। आंवलखेड़ा, आगरा में 20 सितम्बर 1911 को जन्मे आचार्य श्री, राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए चलाए गए अभियान में भी सक्रिय रहे। पीछे उन्होने राष्ट्र के सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष हेतु विचार क्रान्ति अभियान एवं युग निर्माण योजना को अपना आधार बनाया। यही शांतिकुञ्ज अब अखिल विश्व गायत्री परिवार के प्रमुख केन्द्र के रूप में स्थापित हो चुका है।

शांतिकुञ्ज से परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व के आध्यात्मिक जागरण के लिए विभिन्न गतिविधियाँ निःशुल्क चलायी जाती हैं। देश-विदेश के कोने-कोने से जाति, पंथ, भाषा, धर्म, ऊँच-नीच के भेदों को भुलाकर लाखों की संख्या में परिजन यहाँ प्रशिक्षण पाने के लिए प्रतिवर्ष आते हैं। इन सभी का देखरेख एवं व्यवस्थाएँ परम वंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा करती थीं। उन्ही के स्नेह, आत्मीयता भरे व्यवहार का परिणाम है कि मिशन से लाखों-करोड़ों परिजन जुड़ सके। देश भर में गायत्री मंत्र और यज्ञ को सद्विचार ओर सत्कर्मों के रूप में जन-जन तक पहुँचाने का यह अभियान बच्चों से लेकर बड़ों तक, गाँवों से लेकर नगरों तक निरन्तर चल रहा है।

शांतिकुञ्ज

मुख्यालय, अखिल विश्व गायत्री परिवार

www.awgp.org

देव संस्कृति विश्वविद्यालय की स्थापना गंगा की गोद, हिमालय की छाया, उत्तराखण्ड के हरिद्वार जनपद में सन् 2002 में की गई। चारों ओर हरियाली एवं पहाड़ियों से घिरा 80 एकड़ भूमि में फैला यह विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए उत्कृष्ट सुविधाओं से सुसज्जित है। यह, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली द्वारा विधिवत् मान्यता प्राप्त है। वेदमाता गायत्री ट्रस्ट द्वारा संचालित एवं संरक्षित यह विश्वविद्यालय बिना किसी एन.जी.ओ. अथवा शासन के आर्थिक सहयोग से चल रहा है। आर्थिक पूर्ति के लिए मिशन की अनूठी परम्परा समयदान एवं अंशदान है, जिसे मिशन के लाखों-करोड़ों परिजन मिलजुल कर पूरा करते हैं। राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत कुशल आचार्य एवं कर्मचारी यहाँ सेवारत् हैं। विद्यार्थियों में शिक्षा के साथ-साथ चरित्र में उत्कृष्टता, अदम्य साहस, दृढ़ संकल्प, श्रमशीलता एवं सेवा भावना का विकास हो इस पर विशेष ध्यान दिया जाता है। विद्यार्थी विश्वविद्यालय में प्रवेश के समय ज्ञानदीक्षा संस्कार प्राप्त करते हैं तथा अपनी शिक्षा पूरी करने के उपरान्त समाज के ऋण को चुकाने के लिए परिवीक्षा के रूप में दो माह के लिए क्षेत्रों में सेवा करते हैं तत्पश्चात् ही उन्हें प्रमाण पत्र अथवा डिग्री प्रदान की जाती है। यह इस विश्वविद्यालय की अपनी अनूठी पहचान है।

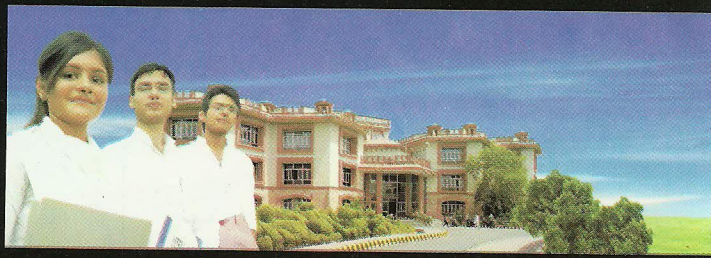

देव संस्कृति
विश्वविद्यालय

Book Code- KD 51

वैश्विक सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पुनर्जागरण के लिए समर्पित

www.dsvv.ac.in